राधास्वामी संत संदेश

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 9 अंक : 108 15 अप्रेल 2006

सदस्यता शुल्क : वार्षिक : रुपए 40/–
भारत व नेपाल में एक प्रति: रुपए 5/–

इस अंक में

1. बड़े महाराज संत ताराचन्द जी द्वारा फर्माया सत्संग 2
2. ध्यानाकर्षण बिन्दू 33
3. सत्संग (महर्षि शिवव्रतलाल जी) 34
4. अनमोल वचन व ज्ञान सार 35
5. सत्संग भावांश 36
6. सतगुरु कृपा 38
7. बड़े हुज़ूर महाराज जी के सत्संग प्रवचन से 40

राजीव कुमार लोहिया, मुद्रक एवं प्रकाशक द्वारा अपने स्वामित्व में राधास्वामी सत्संग प्रेस हालू बाजार, भिवानी से मुद्रित तथा कार्यालय, हालू बाजार, भिवानी से प्रकाशित

फोन नं. : 01664-241570 (भिवानी आश्रम)
01664-265094 (दिनोद आश्रम)

वेबसाइट:- www.radhaswamidinod.org
इ-मेल:- info@radhaswamidinod.org

भिवानी : कैसेट क्रमांक : 119
दिनांक : 7 नवम्बर, 1993
समय : प्रातः

राधास्वामी! राधास्वामी दयाल की दया!!
राधास्वामी सहाय!!! राधास्वामी!

देख प्यारे मैं समझाऊं रूप हमारा न्यारा।

प्रेमियो, सत्संगियो, माताओ और बहनों ! ये हुजूर स्वामी जी महाराज की वाणी है। पहले उन्होंने कहा है कि इस स्थूल शरीर से भी काम है फिर उसमें सूक्ष्म का वर्णन कर दिया है कि जब तक स्थूल देह में नहीं आएगा तब तक काम नहीं चलता है। हमें देहधारी से भी काम लेना पड़ता है। जब तुम्हारा देहधारी से प्यार नहीं है तो तुम राधास्वामी धाम में नहीं पहुंच सकते हो उस नूरी गुरु को नहीं देख सकते हो। स्वामी जी ने कहा है–

देख प्यारे मैं समझाऊं रूप हमारा न्यारा।

अर्थात् इस स्थूल से वह रूप अलहदा है। एक जगह और भी शब्द आता है कि गुरु से गुरु मिला देता है। देहधारी गुरु उस नूरी गुरु से मिला देता है। बहुत सुन्दर मिशाल दी है–

गुरु का ध्यान कर प्यारे, बिना इसके नहीं छुटना।

काफी लोग तो गुरु इस देह को कहते हैं। काफी लोग कहते हैं कि सतगुरु नाम ज्ञान का है। सतगुरु नाम समझ, विवेक और शब्द का है। बात ये सभी ठीक हैं कि जिसका शब्द प्रगट नहीं है वह सतगुरु कहलाने के ही काबिल नहीं है और न सतगुरु हो सकता है। उसको सतगुरु शब्द ने ही तो बनाया है। इसीलिए

कहा है कि गुरु का ध्यान कर प्यारे। सो शब्द का ध्यान तो किया ही नहीं जा सकता है। उस शब्द का ध्यान किस तरह करोगे? **द ष्टि-मुष्टि आवे नहीं।**

उस शब्द की तो रूप रेखा ही नहीं है। उसका ध्यान कैसे करोगे? जब वक्त आता है उस वक्त उसका ध्यान कुदरती हो जाता है। पहले हमें इस देहधारी का ध्यान करना पड़ता है। क्योंकि उसके ध्यान के बिना हम काल माया के चक्र से छुट ही नहीं सकते हैं। चाहे कोई भी हो और कैसा भी हो, देहधारी से प्यार करना पड़ता है। जब उससे प्यार होगा तब हम अंतर में चलने की कोशिश करेंगे। प्यार कैसे होगा? यही बातें मैंने पहले भी बताई थी कि बगैर सतगुरु के रास्ता तय होना बड़ा मुश्किल है। मैं तो यहां तक भी कह देता हूं कि अगर गुरु के प्रति एक बार भी अभाव आ जाता है तो फिर भजन में बाधा पड़ जाती है। फिर वह गिर जाता है। ऐसे आदमियों का नाम लेना बुरा भी है और अच्छा भी है। बुरा तो इसीलिए है–

गुरु द्रोही बचे नहीं, चाहे दुर्वासा हो।

नाम लेना तो इसीलिए बुरा है। अच्छा क्यों है? अच्छा इसीलिये है कि लोगों को पता लग जाए कि इतने बड़े–बड़े होकर भी गिर जाते हैं। पर संत सतगुरु उसको संभाल भी लेते हैं।

एक बार की मिशाल मैंने सुनी है कि हजूर महाराज स्वामी जी के दरबार में महाराज तुलसी साहब चले गए। उनके साथ उनका एक शिष्य था उसको गुरुमुख माना जाता था। उसका नाम गिरधारी दास था। तुलसी साहब हाथरस वाले आपने सुना होगा। वे स्वामी जी के वक्त में थे। उनकी रामायण तो कहती है कि पहले भी वही तुलसी दास थे। उस वक्त उनके साथ गिरधारी दास था। वह बैठा था, उसी समय १०–१५ माई बाई उनके पास आ बैठी। उनके मोटे कपड़े थे। पहले चौसी (खड्डी) के कपड़े

पहना करते थे। उनमें से कुछ बदबू आ रही थी। गिरधारी दास ने कहा–परे दूर बैठ जाओ। तुम्हारे कपड़ों में से बदबू आती है। वे बेचारीं परे बैठ गई। कुछ पास में रह गई। उसने तैश में आकर फिर कहा–परे बैठो। हजूर महाराज को तुम्हारे कपड़ों में बदबू आती है इस पर हुजूर तुलसी साहब जी ने कहा–गिरधारी इनके कपड़ों से तुझे बदबु आती होगी मुझे नहीं। लेकिन इनका हृदय प्रेम से भरा पड़ा है। ये प्रेम में गदगद हो रही हैं। तू इनको दूर मत कर। थोड़ी देर में ही वे फिर बोल उठे, परे बैठो। हजूर महाराज तुलसी साहब को गुस्सा आ गया। उन्होंने कहा–गिरधारी दास ! जाओ, तुम्हें भी इन औरतों का घाघरा सिर पर रख कर मेरे पास आना पड़ेगा।

साधु बोले सहज स्वभाव। साधु का बोला, मिथ्या नहीं जा।।
संतन की वाणी, झूठी हो तो भी सच्चे करके जानी।

वह गिरधारी दास किसी औरत को लेकर भाग गया। बारह वर्षों में वापिस आया। तुलसी साहब के चरणों में सिर पर घाघरा रखकर पड़ गया। उसने कहा–महाराज ! यह कर्म आपकी वाणी से ही हुआ और मेरे भाग ने ही करवाया था। मैं आपकी वाणी को समझ नहीं सका। मेरे ऊपर दया कर दो। वे उसको स्वामी जी के पास ले गए और कहा–शिवदयाल सिंह! इसकी संभाल करो। जब उसका चोला छुटने लगा तो गिरधारी दास शब्द को भूल गया। ये मैं सुनी हुई बातें बताता हूं। स्वामी जी महाराज ने कहा–चलो! हमें हाथरस जाना है। क्योंकि एक प्रेमी बिछुड़ा हुआ है इस वक्त। वे गए और उसको देखा। गिरधारी दास ने उनको देखते ही बंदगी की और कहा–बस ! अब मेरा शब्द भी खुल गया है। इसीलिये मैं कहता हूं कि गुरु तो शब्द है।

शब्द बिना सुरत आंधरी, कहो कहां को जाय।
द्वार न पावे शब्द का फिर-फिर भटका खाय।।

सबसे पहले इसी बात पर मैंने जोर दिया था कि सतगुरु नाम शब्द का है। सतगुरु नाम ज्ञान का है। तो पहले क्या करना चाहिए? उन्होंने बताया कि सतगुरु की शरण लो। सतगुरु की शरण में जाओ। उनके वचनों पर अमल करो। ध्यान करो।

गुरु का ध्यान कर प्यारे।

गुरु के ध्यान करने का अर्थ क्या है? दो ही बातें हैं जब तक मन नहीं टिकता है डांवाडोल होता है, तब तक सतगुरु स्वरूप का ध्यान करने की कोशिश करो। ये जो फोटो और स्वरूप ले जाते हैं ये आरती उतारने के लिए नहीं हैं। इनसे तो मंजिल डांवाडोल हो जाती है। उस स्वरूप की तरफ चार मिनट ध्यान करो। देखो तुम्हारे मन में शांति आ जाएगी। या फिर कोई आफत आई हुई हो तो स्वरूप के आगे विनती करो। वह आफत ढीली हो जाएगी। जिनको तुम्हारे बाप–दादा नहीं जानते और तुम उनके आगे विनती करते हो तो भी संकट ढीले हो जाते हैं। फिर सतगुरु तो हाजिर नाजिर है, देखा जाता है। उससे बातें की जाती हैं। अगर वह पूर्ण है तो निश्चित ही तुम्हारी आफतें ढीली हो जाएंगी। सो उसका ध्यान करते–करते हम उस शब्द में चले जाते हैं।

एक दिन एक प्रेमी ने कहा–आप यह बात मत कहा करो? क्योंकि लोग समझेंगे कि सच्चाई तो बस यही है बाकी तो सब झूठ ही बोलते हैं। मैंने तो अपने स्वार्थ के लिए झूठ नहीं बोली कभी। फिर झूठ बोल कर मैंने क्या लेना है? भिवानी में दिनोद दरवाजे पर एक जगह माता की धोंक मारते थे। अब तो वह माता वहां नहीं रही है। वहां एक खातियों का घर था। उसका नाम तो मैं भूल गया हूं। उसकी मां 'भेरा' गांव की थी। उसके घर में साधु मंगलानंद महाराज आया करते थे। मैं उनके घर पर चला गया। महाराज मंगलानंद आए हुए थे। मेरा उनका प्यार बहुत था। वहां गया तो वे बैठे थे और कई दूसरे भी बैठे थे। मेरे पुराने कपड़े थे।

गरीब हालत थी। ऐसी ही बात होती है भैया! मैं तो अब भी गरीब हूं। मैं उनके पास में गया तो मक्खियां मेरे साथ लगी हुई थी। एक मेरी बहन मामकौर देवी उनकी सेवा किया करती थी। उसने मेरे से कहा–भाई ! परे सी बैठ जा। मैं परे बैठ गया। महाराज मंगलानंद ने कहा–मामकौर ! यह परे क्यों बिठा दिया? उसने कहा–अजी इसके शरीर पर मक्खी लगी हुई हैं और वे मक्खी आप पर भी आ रही थी। महात्मा जी बोले–इसके हृदय पर मक्खी नहीं है। यह कहां से आया है और यह कितना प्रेम करता है? इससे पूछो तो। मैंने कहा–मैं तो चार कौस दिनोद से आया हूं। उन्होंने कहा कि इतनी परे मत बैठ। यहां मेरे पास में आ जा। मैं उनके पास में बैठ गया और उन्होंने बातचीत की। वे बड़े खुश हुए और मैं भी खुश हुआ। ऐसा हर जगह हो जाता है। कोई बात नहीं है। वक्त पता नहीं क्या करवा दे। पर तुम जब सतगुरु का ध्यान करोगे तो तुम खुद ही खुद तिर जाओगे।

गुरु का ध्यान कर प्यारे और यत्न सब छोड़ दे।

यही बात मैंने पहले भी कही थी कि इनको काबू में करने के लिए एक गुरु का ही ध्यान है। एक सतगुरु का ही प्यार। पर एक बार भी विक्षेप पड़ जाता है तो फिर वह प्यार खत्म हो जाता है। फिर वह प्यार कभी भी नहीं रहता है। तुम देखते हो जब घर में स्त्री–पुरुष का झगड़ा बाजी चल पड़ता है तो फिर उनका तलाक हो जाता है और कोई कुछ संबंध रख भी लेता है तो टूटा–फूटा ही काम रहता है। हमेशा तक वह बिगड़ता ही रहता है। सो मैं सतगुरु की देह की बड़ाई करता हूं। उनकी दया यही है कि उस सुरत और शब्द का मेल हो जाता है। जब अभ्यास करते हो तो उनसे इतना प्यार बढ़ जाता है। स्थूल शरीर से भी और फिर स्थूल से प्यार करते–करते फिर हम अंतर में चले जाते हैं। इसके लिए हम हरेक को एक बात बताया करते हैं कि अभ्यास में दोनों

वक्त बैठा करो। हमारे पुराने आदमी संध्या किया करते थे और वे जब तक संध्या नहीं कर लेते थे, रोटी नहीं खाते थे। उनको कहते थे कि बाबा या बापू ! रोटी खा ले। वे कहते थे कि मैंने संध्या नहीं की है। संध्या करके रोटी खाते थे। उनका टेम होता था। वे बेचारे गुरु को नहीं जानते थे। पर आप कहोगे–क्या गुरु की प्रथा अभी चली है? नहीं। सतगुरु की प्रथा तो परम्परा से चली हुई है। यह तो सतयुग से ही है। यह गुरु शिष्य का व्यवहार परम्परा से ही चला आ रहा है। तो जब उनका इतना प्यार था तो तुम तो मौजूदा (मौजूदा गुरु के साथ में) हो। तुम संत सतगुरु की शरण में चाहे कहीं भी जाओ। ब्यास, आगरा, सिरसा या होशियारपुर कहीं भी जाओ, जिसका शब्द खुल गया है वह सारी दुनिया का कर्ता सतगुरु एक है। महाराज गरीबदास जी कहते थे कि कुल का खाविंद एक है। सारी दुनिया का कर्ता वह सतगुरु, वह शब्द एक है। अगर शब्द खुल गया है तो। जिस का शब्द खुल गया है वह सतगुरु किसी से भी विरोध नहीं करेगा। जब वह विरोध करेगा तो यही समझो कि इसका शब्द नहीं खुला है और खुल भी गया है तो ये काल के रास्ते पर चला गया है। विरोध तो नहीं करते हैं। जो काल के रास्ते पर चल पड़ते हैं उनको असलियत का पता ही नहीं लगता है या वे पेट के पुजारी हैं। उसका रोजगार मारा जाएगा। उन्हें विरोध करना पड़ता है। संतों को रोजगार का भय नहीं होता है। संत तो खुद ही अपना करके खाते हैं। दूसरे के ऊपर भार नहीं होते हैं। गुरु का ध्यान कैसे किया जाता है? कई तो स्वरूप का ध्यान करते हैं। पर जब तुम एकांत में बैठोगे तो स्वरूप का ध्यान करते–करते शब्द अपने आप खींच लेगा। जैसे अजगर अपनी खुराक को खींच लेता है। जैसे चुंबक लोहे को खींच लेता है। इसी तरह शब्द भी सुरत को खींच लेता है। क्योंकि ये उसकी अंश है। अंश को अंशी निश्चित ही खींच लेता है। सभी

जगह यह कुदरती नियम है। जैसे ऊपर को चीज फैंकोगे तो भारी चीज नीचे जरूर आएगी क्योंकि उसमें प थ्वी का अंश है उसे प थ्वी खींच लेती है। पर जिसमें वायु का अंश है हलकी है उसे फैंक दो तो वह नीचे नहीं गिरेगी कभी भी। वह तो ऊपर ही चली जाएगी। इसीलिए सभी अपने–अपने अंश को खींचते हैं। मैं ज्यादा पढ़ा लिखा होता तो और भी हिन्दी की चिन्दी बना देता और चिंटी की खाल उधेड़ देता। मैं सीधी सादी बातें कह देता हूं। पढ़ा लिखा आदमी हो उसका हिसाब दूसरा ही होता है। वह तो बिना की हुई आधी बात को भी सीधी बना देता है। सो मैं विद्या व पढ़ाई की बुराई नहीं करता हूं। विद्या अच्छी है। राधास्वामी मत में जितने भी संत हुए हैं सिवाय मेरे, सभी विद्वान हुए हैं। विद्या भी कोई चीज होती है, छोटी बात तो नहीं है। यह तो सोने में सुहागा है। पर विद्या का कभी घमण्ड नहीं करना चाहिए। घमण्ड करते हो तो शब्द की कमाई का करो। घमण्ड करो तो गुरु के दर्शन का करो। इसीलिये गुरु का ध्यान कर प्यारे।

सो गुरु का ध्यान करोगे तो जीवन सफल हो जाएगा। जब स्वरूप का ध्यान करके अंतर में जाओगे तो शब्द खुल जाएगा। वही शब्द तुम्हें इतना प्यारा लगेगा कि तुम खुद ही उस शब्द का रूप बन जाओगे। तुम्हारे हृदय में दूसरी चीज नहीं आएगी। मैंने छोटी उम्र में थोड़ी बातें सुनी थी। सनातनियों का सत्संग सुना था। क ष्ण जी महाराज की पाती लेकर ऊधो गोपियों के पास गया था। उसने कहा कि ये पाती दी है। उन्होंने कहा इस पाती को कहां रखें, क्योंकि हृदय में तो क ष्ण जी बसा हुआ है। इसको रखने की तो कोई जगह ही नहीं है। जिनके हृदय में सतगुरु का रूप बस जाता है उनको और चीज की जरूरत ही नहीं रहती है। पीछे कुछ भी नहीं रहता है। मैंने ऐसी बातें काफी सुनी हैं। तुम्हारी पुष्टि करने के लिये कहता हूं। जब हम ऐसी–ऐसी बातें सुनते हैं

तो शांति आ जाती है। एक बार की बातें बताते हैं। रूक्मणी क ष्ण जी से कहने लगी–महाराज जी ! आपको राधा बहुत प्यारी है लेकिन हमने तो राधा को देखा नहीं है। एक बार उस राधा को बुला तो दो। क ष्ण जी ने कहा–वह कभी न कभी आ भी जाएगी। अगले दिन राधा जी आ गई। रूक्मणी बैठी थी। जब राधा जी आई तो कहते हैं, सौतन का विरोध तो होता ही है। कुंती माता जैसी तो कोई भागी ही होती होगी, जो विरोध नहीं करती हो। उन्होंने पूछा कि क्या सेवा करें। राधा ने कहा कि दूध लाओ। अब जलते हुए दूध का गिलास भर करके उसने उसके आगे रख दिया। वह दूध को पी गई। उसने कोई भी ख्याल नहीं किया। मैं तो सुनी हुई मिशाल देता हूं। राधा जी दूध को पी गई और शांति से बातें करके चली गई। शाम को जब रूक्मणी पांव दबाने लगी तो क ष्ण जी के पांव में फंफोले थे। रूक्मणी ने पूछा–महाराज जी! ये फफोले कैसे हैं? क ष्ण जी ने कहा–रूक्मणी यह तो तेरी ही मेहरबानी है। रूक्मणी ने कहा–मैंने क्या किया? क ष्ण जी ने कहा–जो आपने किया है उसका तो मुझे ही पता है। मेरे भक्त को तो कोई पता नहीं होता है क्योंकि मेरा भक्त जो मेरे अर्पण हो जाता है उसकी मदद तो मैं ही करता हूं। तूने जलता हुआ दूध उस बेचारी राधा को दे दिया। उसने वह जलता हुआ दूध पी लिया। उसके हृदय में मेरे चरण थे। वह तो मेरे अर्पण हो चुकी थी। उसने जो दूध पीया वह मेरे चरणों पर जा कर लगा। अगर उसके हृदय में मेरे चरण नहीं होते तो वह जल जाती। सो यह तेरे गर्म दूध का नतीजा है। इससे मेरे पांव जले हैं।

अब ! मैं तो ये तुम्हारी ही सुनी हुई बातें बताता हूं। इन्हें चाहे तुम असत्य भी मान लो। मैं तो सत्य ही मानता हूं। किसी भी बात को झूठी नहीं मानता। ऐसे–ऐसे हुए हैं। नामदेव ने पत्थर को ही दूध पिला दिया। कोई कहे कि यह तो पत्थर की निंदा नहीं करता

कभी भी। इतनी बात जरूर कहता हूं कि विश्वास रखो। तुम आरती उतारते हो। यदि तुम्हारे दिल में विरोध है तो तुम झूठी ही आरतियां उतारते हो। यदि विरोध, ईर्ष्या और द्वेष होता है तो फिर तुम कैसे तिरोगे? अगर तुम्हारा उस मूर्ति से सच्चा प्रेम है तो परमात्मा तो जर्रे–जर्रे में रमा हुआ है। फिर उस मूर्ति में तो अनेकानेक, बहुत ही बड़े जर्रे हैं। उसमें तो जरूर ही प्रगट हो जाएगा। अब तुम प्रश्न कर सकते हो–आप अभी तो कह रहे थे जिसको तुमने देखा नहीं है और सुना नहीं है वह तुम्हारी कैसे मदद करेगा? विश्वास की बातें तो मैंने नहीं तोड़ी हैं। विश्वास के बारे में तो मैंने पहले भी कहा और अब भी कहता हूं। मेरे पास कितने प्रेमी आते हैं। कहते हैं कि महाराज! हम देवी देवता धोंकते हैं। मैंने तो किसी के देवी देवता नहीं छुटवाए और अगर मैं कह दूं कि छोड़ दो और आगे तुम्हें कोई बाधा या नुकसान हो जाए तो फिर यही कहोगे कि हमारे देवी–देवता ही छुटवा दिए और हमारे घर में ये नुकसान हो गया है। होता तो है वह हमारे कर्मों का। देवी–देवता तो किसी का नुकसान करते नहीं है। बताओ मां कभी अपने पुत्र को खाती है क्या? सो देवी देवता तो किसी को दुख नहीं देते हैं। हमें अपने कर्मों का दण्ड भोगना पड़ता है। पर जो गुरु का ध्यान करते हैं उससे वे जरूर बच जाते हैं। दण्ड तो उनको भी भोगना पड़ता है। पर वे इसको महसूस नहीं करते हैं। जैसे बेहोशी का सूआ लगा कर चीरा लगा देते हैं, उसको दुख तो होता है। पर उनको बेहोशी में पता नहीं लगता है। इसी तरह जिसको सतगुरु से या उस शब्द से प्यार है उस शब्द की बेहोशी में वे किसी को बता नहीं सकते हैं। वे मस्त रहते हैं। वे कुछ दुख आता है तो दुख में भी राजी रहते हैं और सुख आता है तो सुख में भी राजी रहते हैं। वे हाय–हाय नहीं करते हैं। ऐसा वक्त तभी होता है जब हम सतगुरु के रंग में रंग जाते हैं। सतगुरु की शरण

ले लेते हैं। सतगुरु का ध्यान कर लेते हैं जैसे इन्होंने कहा कि–

गुरु का ध्यान कर प्यारे। बिना इसके नहीं छुटना।

यह आगरा वाले स्वामी जी महाराज की वाणी है। वे कहते हैं कि बिना इसके नहीं तिरना। हम तो गुरु का श्रंगार और उसकी सुन्दरता को देखते हैं। उसके चारों तरफ पिस्तौलों वाले और लठ वाले खड़े हैं तो कहते हैं कि बस यह गुरु है भाई। गुरु की पहचान का पता ही नहीं होता है।

गुरु सोइ जो शब्द स्नेही। शब्द बिना दूसर न सेई।।
शब्द कमावे सो गुरु पूरा। उन चरणन की हो जा धूरा।।
और पहचान करो मत कोई। लक्ष अलक्ष न देखो सोई।।
शब्द भेद लेकर तुम उनसे। शब्द कमाओ तन-मन से।।

शब्द की पहचान तो यह है। उसका पहरा शब्द देता है। उसकी ड्यूटी शब्द स्वरूपी ईश्वर बजाता है। इसीलिए कहा है कि **गुरु का ध्यान कर प्यारे।** आगे कहते हैं कि **नाम के रंग में रंग जा।** उसके रंग में कैसे रंग जाए? उसे कोई दूसरी चीज अच्छी न लगे। नाम कई तो होते नहीं हैं। वह नाम एक ही होता है। इस नाम में इतना चौकस रहे कि कभी भी दूसरी कोई चीज दिमाग में ही न आए। उस नाम में इतना घुल मिल जाए जैसे दूध और पानी मिल जाते हैं। मैं कहता हूं कि उस नाम को दूध पानी की तरह से याद करो। दूध और पानी का इतना प्यार होता है कि जब इनको गर्म किया जाता है तो पानी जलने लगता है। दूध सोचता है कि मेरा यार कहां गया। वह दूध उफन कर भागता है। पर पानी के छींटे देते ही दूध नीचे बैठ जाता है, सोच लेता है कि यार तो यही है। इसी तरह से जब नाम को भूल जाते हो तो इतना ख्याल करो जैसे २५ वर्ष का लड़का मर गया हो। जब ऐसे रंग में रंग जाओगे तो अपना जीवन सफल कर लोगे। न किसी दुख का पता लगता है और न किसी सुख का। न किसी का विरोध है न किसी से

लगाव। सभी बराबर हैं। ऐसा उसके नाम में रंग जाओ तो–

नाम के रंग में रंग जा, मिले तोहे धाम निज अपना।

वह निज अपना धाम राधास्वामी धाम है और धाम तो कोई किसी ने बताया ही नहीं है। कोई और धाम मिलता भी नहीं है। वह सुरत राधास्वामी धाम से ही आई थी और उसी राधास्वामी धाम में चली जाती है। आजकल तो हम नाम भी ऐसे ही देते हैं। कोई सतलोक से आगे का नाम ही नहीं बताता है। कोई राधास्वामी धाम का निशाना ही नहीं बताता है। कोई पांच धुनि नहीं बताता है। कोई नीचे की ये बातें नहीं बताता है तो कोई ऊपर तक खोल कर बता देते हैं। जब तक पूरा पता ही नहीं है तो सुरत भी पूरी जगह जा नहीं सकती है। उसे अपना धाम मिल ही नहीं सकता है। वह कैसे पहुंचेगी? सो इस तरह तुम्हें अपना धाम मिल जाएगा। वहीं पहुंच जाओगे। आगे कहते हैं–**गुरु की शरण द ढ़ कर ले।** ये वही बातें फिर आ जाती है। मैंने आपको ये बातें कहीं थी कि शरण लेना ही बड़ा मुश्किल है। नाम लेना तो मामूली बात है। शरण लेना बड़ा कठोर काम है। शरण तो अंगद साहब ने ली थी। अनेक आफतें झेलीं। शरण तो महाराज राय सालिगराम जी ने ली थी। कितनी आफतें झेलीं? जितनी तनख्वाह मिलती थी सारी ही हजूर स्वामी जी महाराज के चरणों में रख दिया करते थे और हजूर महाराज स्वामी जी उस को खर्चा समान देकर सारी को भूखों को बांट देते थे। यह हजूर महाराज सालिगराम का काम था। स्वामी जी महाराज उनके गुरु थे। वे बांट देते थे। हम उसी प्रणाली के हैं। वे उनके रंग में रंगे हुए थे। इतनी सेवा न किसी ने की और न आगे कोई कर ही सकता है। इतना गुरुमुख न कोई धरती पर आया है और न आ सकता है। उनमें बड़ी भारी गुरुमुखता थी। इसीलिए वे अपने गुरु के ध्यान में भी रहे और गुरु के नाम में भी रंग गए थे। उन्हीं में मस्त रहते थे। यही सतगुरु की

शरण लेना है और शरण लेकर अपना जीवन बनाना है। आगे कहते हैं–

लाभ और मान क्यों चाहे, पड़ेगा फिर तुम्हें देना।

अगर हम अपना कोई लाभ और मान चाहने लग जाते हैं तो फिर सतगुरु की शरण छोड़ देते हैं। यह मेरा अपना तजुर्बा है और मैंने बार–बार देखा है। तुम सतगुरु से पर्चे मांगने शुरू कर दो। तुम सतगुरु के कभी भी नहीं रहोगे। दो चार काम उसको कह दिये और उसने वे कर दिए और फिर कोई ऐसा मौका आया कि उसका काम नहीं किया तो वह कह देगा कि इसको छोड़ दो। मुझे तो और कहीं जाना है। सब स्वार्थी बन जाते हो। स्वार्थी तो न गुरु ही काम करता है और न स्वार्थी शिष्य ही काम करता है। दोनों ही स्वार्थ में डूब जाते हैं–

गुरु लोभी शिष्य लालची, दोनों खेलैं दाव।
अध बीच में डूबसी, चढ़ पाथर की नाव।।

वे दोनों गिर जाते हैं। लाभ और हानि दोनों भोगने पड़ते हैं। हम गुरुओं के पास जाकर यह मांग करते हैं कि मेरा यह काम बन जाए मेरा वह काम बन जाए। एक मांग मांगो। वह जरूर ही पूरी होगी। पर तुम वह काम करके फिर कहते हो कि मेरा ध्यान नहीं लगता है। यह गलत बात है। ध्यान तो तुमने मांगा ही नहीं है पगले! तुमने तो मांग ही यही की है कि मेरी भैंस ठीक हो जाए। मेरा मुकदमा ठीक हो जाए। मेरे छोरा हो जाए या मेरी बीमारी ठीक हो जाए। तूने तो यही मांग की थी। तूने ध्यान और उस घर जाने की मांग तो की नहीं है। तूने जो मांग की थी वह काम तो तेरा बन ही गया। हां वह तो बन गया है। फिर मौज करो। एक लड़की मेरे पास आई और बोली कि मेरे ऊपर तो मौज ही कर दी। उसने फिर कहा–थोड़ी सी मौज और कर दो। मैंने पूछा–वह क्या? उसने बताया कि बस यह बात मेरे हक में इस तरह से आ

जाए। मैंने अपने मन ही मन सोचा कि इसके ये काम तो बन गए और अगर यह काम इसका नहीं बना तो यही कहेगी कि कैसा महाराज जी है? वे लोग कभी भी कामयाब नहीं हो सकते हैं। लोभी भक्त नहीं हो सकता है। उनसे भक्ति हो ही नहीं सकती है।

कामी तिरे, क्रोधी तिरे पापी तिरैं अनन्त।
लोभी जिवड़ा ना तिरे कहैं कबीर सिद्धंत।।

कबीर साहब कहते हैं कि लोभी जीव तो तिर ही नहीं सकता है। कौन सा लोभी? जो बार–बार पर्चे चाहता है कि मेरा ये काम हो जाए। वह कभी भी तिर नहीं सकता है। फिर कहते हैं–

कामी तिरे, क्रोधी तिरे पापी तिरैं अनंत।
आन उपासक क तघ्न तिरे न नाम रटंत।।

अर्थात आन उपासक और क तघ्न कितना ही नाम रटो, तिर ही नहीं सकता है कभी भी। कबीर साहब के दोहे हैं। मेरे तो हैं नहीं। मैं तो अपनी पुष्टि करने के लिए ये दोहे बताता हूं। मुझे याद आ गए थे। इसीलिए मैं आप लोगों को कहता हूं कि मान और हानि–लाभ ये तो देने लेने पड़ेंगे। अगर तुम लोगे तो। मुझे एक महात्मा ने एक बात कही थी–बेटा! मान को तोड़ कर फेंक देना। आग लगो इस मान बड़ाई को। अपना काम कर लेना। यह मान बड़ाई तो यमपुर में ले जाने वाली है। इनसे बचकर रहना। अपना काम करना। जैसे भी बने वैसे ही कर लेना। मैं भी आप लोगों को यही कहता हूं कि इन मान बड़ाइयों में जीवन बिगड़ जाता है। मान बड़ाई वाला तो अपना मुंह काला करके चला जाता है। सो अपना काम करके जीवन सफल कर लो। यही स्वामी जी ने कहा है। मान और लाभ तो भोगने पड़ेंगे। जिसने भी ये चाहे सभी को भोगने पड़े। बार–बार जन्म लेना पड़ जाता है। सो हम उस जन्म के अधिकारी ही क्यों बनें? उनसे परे रहें तो ही अच्छा है। फिर आगे कहते हैं–

कर्म जो-जो करेगा तू, फिर वही भोगना भरना।

कितनी बड़ी बात है।

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करहिं तस फल चाखा।।

अब। यह रामायण की बात होगी? मेरा सुना हुआ दोहा है। यही स्वामी जी ने कहा है कि कर्म जो–जो करेगा, वही भोगना भरना। फिर बताओ हम कौन से खेत की मूली हैं? हमें भी अपना भोगना पड़ेगा। कोई भी जो आया उसी को अपने कर्म भोगने पड़े। ब्रह्मा, विष्णु जिसे कहते हो इन्हें भी अपने कर्म भोगने पड़े। इन्द्र को भी अपना कर्म भोगना पड़ा। चाहे कोई बड़ा हो या छोटा हो सभी को अपना कर्म भोगना पड़ता है। फिर हम दूसरे को दोष क्यों दे? कई कहते हैं कि मेरे महाराज ने मेरी मदद नहीं की, मेरा ये काम बना नहीं। अरे! कर्म तो तेरे ऐसे ही थे। काम कैसे बनता? अपना–अपना कर्म सभी को भोगना पड़ता है। सहजोबाई ने कहा है–

अपना किया भुगत रे जिया।
सतगुरु पूरा ढूंढन न किया।।

जिसने पूरा सतगुरु नहीं ढूंढा वह क्या कर सकता है? सतगुरु पूरा तो कर्म की रेख पर मेख मार देता है। मन भर में एक सेर भर कर्म छोड़ता है। इसे सतगुरु की शरण कहते हैं। जिसने शरण ले ली है उसका लेखा निमड़ जाता है। जिसने शरण ले ली है उसका सारा काम बन जाता है।

सतगुरु शरणा लीजे भाई। ता ते जीव नर्क नहीं जाई।।

शरण लेना हर एक के वश की बात नहीं है। सो आगे कहते हैं–

जगत के जाल से हटो, मर्दानगी करना।

अब। जगत के जाल से जो हट जाता है यह उसकी मर्दानगी

होती है। आप पूछ सकते हो–क्या मैं जगत के जाल से हट गया हूं? हट गया हूं तो किस तरह हट गया हूं? जगत के जाल से हटना बड़ा मुश्किल है। किसी का दुख है, किसी का सुख है। कोई मुझे रूलाता है तो किसी को मैं भी रूलाता हूं। यह जगत का जाल ही है कि कोई डेरा कहीं पर बना लिया है और कोई कहीं पर बना लिया है। पर जो इस जाल में बंध कर हाय–हाय करता है, वह मर जाएगा। यहां तो चाचा साधू राम है, रतीराम, माधव और राजीव है, मैंने तो इनको कभी भी नहीं पूछा कि क्या बनता है और न ही इससे मेरा कोई ताल्लुक है। न ही मैं यहां का कोई मेम्बर हूं। न मैं कोई ट्रस्टी हूं। मैं तो ट्रस्टी उस बड़े मकान का हूं। अगर वह मेरा ट्रस्ट निभ गया तो। किसका? मैं केवल अपने शरीर का ट्रस्टी हूं। यही सबसे बड़ी सराय है। सबसे बड़ा गुरूद्वारा है और मंदिर है। अगर ये पवित्र रह जाता है तो वही काफी है। पर मालिक की दया है। ये अपनी ड्यूटी देते हैं। मैं तो न कोई हिसाब ही रखता हूं और न मुझे पता ही है। मैंने तो अपना काम करना है। सो जगत के जाल से हटना है। ये अगर कह दें कि हम भी हटेंगे। सो यह तो सब के वश की बात नहीं है। उनको जो काम करना है यह भी सबसे बड़ी भक्ति है। किसी ने शरीर से पाप किए हुए होते हैं तो शरीर की सेवा ले ली जाती है। जिसके पैसे से पाप किए हुए होते हैं उनसे पैसे की सेवा ली जाती है। जिन्होंने मन से पाप किया होता है उनसे मन की सेवा ली जाती है। इसी तरह सुरत से पाप किया हुआ होता है तो उससे सुरत की सेवा ली जाती है। सत्संग में ये न्यारी–न्यारी सेवा होती हैं। जिस किसी को जो सेवा मिल जाती है तो उसे अपने अहो, भाग्य समझना चाहिए। भाग्य से ही ये सेवा मिली है और इस सेवा को हमें मन लगा कर करना चाहिए। तन–मन से सेवा करें। वही भागी आदमी होता है जो हुक्म बजाता है। अगर वह चार सौ बीसी करता है तो

समझ लो उसके दिन खराब है। वह सतगुरु कुल मालिक जानीजान है और वह सब के मन की बातें जानता है। इसलिए जितना भी संसार का जाल है इससे बचने की कोशिश करनी चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि परिवार को छोड़कर साधु बन जाओ। फिर तो कोई बचना नहीं है। क्या मैं बच गया हूं? एक छोटी सी कुटिया थी और अब बड़ी कुटिया बन गई है। एक घर छोड़ कर हजारों घर बना लिए। एक बीबी को छोड़ देते हैं और हजारों बीवियां कर लेते हैं। इससे भक्ति नहीं होती है। भक्ति तो पिछले हजारों जन्मों के भाग्य से होती है। यह भक्ति तो वहां आकर खत्म हो जाती है। इस तरह से आपने भी देखे होंगे कि बड़े–बड़े दुखों और बीमारी के कारण घर छोड़ कर या और किसी टोटे के कारण चले जाते हैं। फिर पूरा धन और जायदाद मिल जाती हैं। फिर वे मुकदमें करने शुरू कर देते हैं। फिर एम. एल. ए. बनने लग जाते हैं। राजनीति में हिस्सा ले लेते हैं। उनमें गिरावट आ जाती है। सो भक्ति नहीं होती है। भक्ति को हम पीछे छोड़ जाते हैं। भक्ति को तो भूखा ही कर सकता है। गरीब ही कर सकता है भक्ति। शक्तिशाली आदमी तो मुकदमें कर सकता है। वह भक्ति नहीं कर सकता है। सो ही स्वामी जी कहते हैं कि गुरु के रंग में रंग जाओ। नाम और गुरु एक ही चीज होती है अगर उनके रंग में रंग गया तो हमारा जीवन सफल हो जाता है और अपने घर जाने की तैयारी हो जाती है। उसे कोई रोक ही नहीं सकता है। उसे रोकने वाला कोई भी नहीं है। जगत के जाल से आगे निकल जाओगे। क्या हम साधु बनकर जगत के जाल से आगे चले गए हैं? साधु बन कर भी नहीं निकलते हैं। जो शरण सतगुरु की लेता है और अभ्यास करता है वह अपने आप ही निकल जाता है। वह इस प्रकार निकल जाता है जैसे मैंने महात्माओं की बातें सुनी हैं। जैसे हंस की चोंच में इतनी शक्ति होती है कि वह दूध को छांट लेता

है और पानी को छोड़ देता है। इसीलिए जो सत्संगी हंस का रूप करके आता है वह गुण लेकर संसारी अवगुणों को छोड़ देता है। वह आगे निकल जाता है। सो–

घर में रहो और कमा कर खाओ।
पर धन पर तिरिया से नेह न लगाओ।।

हजूर महाराज राय सालिगराम जी की वाणी है। तुलसीदास ने भी यही कहा है–

परतिरिया को माता समझो, परधन धूल समान।
इतने में हर ना मिले तो तुलसीदास जमान।।

यही हालत तभी आती है जब आदमी नाम के रंग में रंग जाता है। गुरु के रंग में तुम रंग जाओगे तभी यह हालत आएगी। फिर हम संसार के जाल में नहीं फंस सकते हैं। आप कहोगे–क्या आप निकल गए हो? मैं कैसे निकल गया? मैं भी तुम्हारे जैसा ही दिखता हूंगा तुम्हें। क्या मैं रोटी नहीं खाता हूं या पानी नहीं पीता हूं? पर आप उस बात को समझे नहीं हो। यदि इन्हीं बातों में फंसे रहे तो फिर तुम भी नहीं निकल सकते हो। कई जाकर कहते हैं–यह महाराज हमारे से आगे कैसे हैं? हमारी तरह ही काम करता है। हमारी ही तरह खाता–पीता है। हमारी तरह ही बोलता है। यह न्यारा ही कैसे है? कई वर्षों की बात हो गई। मेरे कपड़े पीले थे और मैंने एक भैंस ले रखी थी। मैं भैंस को पानी पिलाने के लिए जा रहा था तो एक ने कहा–राधास्वामी ! मैंने भी कह दिया–राधास्वामी ! दूसरा एक मेरे ही परिवार का था। मेरे पास ही रहता है। उसने कहा–ये राधास्वामी कहां से हो गया? इसने न्यारा क्या कुछ कर लिया है? वही भैंसों की पूंछ यह मरोड़ता है। ऐसे ही हम मरोड़ते हैं। यो के न्यारा राधास्वामी हो गया? मैंने कहा–मैंने तो इसको राधास्वामी नहीं कहा है। यह तो अपने आप ही बोला है। इसको रोक दे। अगर उसको बताया जाए कि तू अब

देख ले। यह तो अब मेरे पास ही आकर रहने लग गया है। यही एक न्यारा फर्क है। राधास्वामी नाम घर छोड़ने से नहीं होता है। वह तो घर में रहकर भी कर सकते हो। पूरा विश्वास और श्रद्धा होनी चाहिए। मेरा चाचा लगता है वह। इसलिए ही इतनी भारी बातें कही और मैं कहूं भी क्या? मैं किसी से छुपा कर नहीं रखता हूं। अपनी बातें कह देता हूं। पर ये बातें क्यों हुई? उसने अहंकार से ही ये बातें कही थी। वह लाइन पर नहीं था। मेरा तो सतगुरु से प्यार था। चौधरी इन्दराज बादली वाले ने सारी उम्र हल जोता और खेती की। उसकी प्रणाली के सभी दुखी होकर मरे। पर वह एक परमसंत शांति से गया। वह बाहर का और भीतर का भी दोनों तरफ का संत था। मैंने और भाई रतीराम ने जब वह भिवानी आया था तब उसको देखा था। सो संत सतगुरु की पहचान यह होती है कि दोनों साधन बाहर का और भीतर का वह रखता है। कई लोग बाहर का तो जानते हैं पर वे अंतर का नहीं जानते हैं। कई अंतर का जानते हैं बाहर का नहीं जानते हैं। कबीर साहब ने दोनों का वर्णन किया है। स्वामी जी ने भी दोनों का वर्णन किया है। क्यों किया? क्योंकि वे पूर्ण पुरुष थे। उन्होंने कहा है–

खोलों आंख निकट ही देखो।

पर यह भी तो कहा है कि अपने अंतर में झांक कर देखो। अंतर में चलो। तभी काम बनेगा। संत सतगुरु आते हैं वे एक पक्षीय नहीं होते हैं। दोनों पक्षों को लेकर चलते हैं। एक पंख से पखेरू उड़ नहीं सकता है। दोनों पंख होती हैं तभी उड़ता है। सो गुरु के रंग में रंगना और संसार के बंधन से आगे निकलना यही है। अब जिनका मैंने नाम लिया है वे यहां कितना काम करते हैं? क्या अपने घर में काम नहीं करते हैं? वे उस काम को भी करते हैं और यहां भी करते हैं। वे सुमरन ध्यान भी करते हैं। इसका नाम है निकलना। और भी बहुत सत्संगी आते हैं। सभी सत्संग में सेवा

करने के लिए आते हैं। क्या उनका उद्धार नहीं होगा? मैं तो यहां तक भी कहता हूं कि अगर उनका गुरु घटिया है तो उद्धार नहीं होगा। अगर उनका विश्वास है और उनका गुरु पूर्ण है तो उनकी पीढ़ियों का भी उद्धार होगा। स्वामी जी ने कहा है जिसको राधास्वामी नाम मिल गया है उसकी भंगिन भी तिर जाएगी। तो तुम तो नाम के रंगे हुए काम करते हो और सेवा करते हो। तुम्हारी तो एक सौ एक पीढ़ी तिर जानी चाहिए। आगे फिर कहते हैं–यह मन है इस मन को सतगुरु की शरण से ही जीता जा सकता है। मन को नाम की कमाई से ही जीता जाता है। नहीं। मन को जीतना बड़ा कठिन है। जो मन को जीत लेता है वह त्रिलोकी पर कब्जा कर लेता है। छोटी उम्र थी। पता नहीं मैंने योग वशिष्ठ सुना था। उसमें राम और वशिष्ठ जी का कोई प्रश्न है ये मेरी सुनी हुई बातें याद आ जाती हैं।

वशिष्ठ जी महाराज ने कहा कि हे राम! अगर मुझे कोई आकर कहे कि जितने भी संसार के पत्थर थे उनको पीस कर सुरमा बना दिया है। यह बात मान लूंगा। उसने जरूर यह काम कर दिया होगा। पर मैं यह बात नहीं मानूंगा कि किसी ने मन को काबू में कर लिया है। हे राम! अगर कोई कहे कि मैंने सारे संसार की वायु को इकट्ठी करके रोक लिया है तो यह जरूर भी मान लूंगा। यकीन के साथ मैं मान लूंगा कि वायु को रोक दिया है। फिर अगर कोई यह कहे कि मैंने अपना मन काबू में कर लिया है। यह बात मैं नहीं मानूंगा। अब इस तरह की उन्होंने काफी बातें कहीं हैं। अब बताओ वशिष्ठ जी ने राम को क्या कहा है? कि मन को रोकना कोई हंसी खेल तो नहीं है। यही स्वामी जी ने कह दिया–

बड़ा बैरी है ये मन घट में, इसी को जीतना कठिना।

इसको कैसे जीता जाएगा? इसको जीतना है तो सतगुरु से

प्यार करो।

गुरु बढ़ाए सब बढ़े, बलकर बढ़ा न कोय।
बलकर हिरणाकुश रावण बढ़े जड़ामूल से गए खोय।।
बने तो गुरु से बने ना बिगड़े भरपूर।
तुलसी बने जो और से उस बनने पर धूर।।

यह मन सतगुरु की ही दया से काबू में आ सकता है। आप कहोगे कैसे?

मैं एक सीधी मिशाल लेता हूं। किसी का बाप आता है और उसका बेटा खड़ा होकर पेशाब करता है। वह बाप को देख कर बैठ जाएगा। अगर किसी डूबे हुए खानदान का ही है तो बात दूसरी है। वह देख लेता है कि तेरा बाप आ रहा है। सो सतगुरु का ध्यान जब अंतर में लग जाएगा तो तुम्हारा मन छलांगे नहीं मारेगा। छलांग मारेगा तो गुरु का रूप सामने आ जाएगा। जब तक छठे चक्कर पर गुरु का रूप बैठा रहता है तो फिर क्या उसका मन छलांगे मारेगा? वह कहीं जा ही नहीं सकता है।

दौड़त-दौड़त दौड़िया, जहां तक मन की दौड़।
दौड़ थकी मन थिर हुआ, वस्तु ठौड़ की ठौड़।।

तो ये मन ठौड़ की ठौड़ कब होगा? इस मन को घर में रोकना ही मुश्किल है। कब रोका जाएगा? कबीर साहब जी का दोहा मैंने कई बार कहा है–

मन जा तो जाने दे, गहकर राख शरीर।
बगैर चिल्ला चढ़ाए कमान को कैसे लागे तीर।।

जब तक कमान के चिल्ले पर तीर नहीं चढ़ाया जाएगा तो वह चल ही नहीं सकता है। इसी तरह से अगर मन जाता है तो जाने दो तुम आसन लगाकर बैठ जाओ और ध्यान में बैठे रहो। घंटे आधे घंटे में मन थक जाएगा। अगर उसको ज्यादा जल्दी काबू करना चाहते हो तो उसको मोड़ लाओ फिर जाता है तो उसे

फिर मोड़ लाओ। वह थोड़ी देर में ही थक जाएगा। शांति आ जाएगी। अगर मोड़ने की भी हिम्मत नहीं है तो बैठे रहो। उठो मत। सुमरन करते रहो आंख बंद करके प्रकाश भी चाहे आए या न आए। बैठे रहो। प्रकाश आप ही आ जाएगा। प्रकाश तभी आएगा जब इसकी दौड़ थक जाएगी। इसकी दौड़ तभी थकेगी जब तुम दो ढाई घंटे ध्यान में बैठोगे। पन्द्रह बीस मिनट ही अगर तुम ध्यान में बैठते हो तो फिर इसकी दौड़ नहीं थकेगी। संतों ने ऐसा कहा है–

दो घंटों के साधन से हो जाता है प्रकाश।

इस प्रकार शरीर सुन्न हो जाएगा। सुन्न होने पर मन की व ति एकाग्र हो जाएगी। तब यह दौड़ लगाना छोड़ देगा। इसी को कहा है–

दौड़त दौड़त दौड़िया, जहां तक मन की दौड़।
दौड़ थकी मन थिर हुआ, वस्तु ठौड़ की ठौड़।।

पर दूसरे दोहे में कबीर साहब ने यह भी कह दिया है–

आसन ला के बैठ गया, मिटी न मन की आस।
कोल्हू के बैल ज्यों, घर में कौस पचास।।

अब दोनों दोहे एक साथ ही कह दिए हैं तो निर्णय क्या करोगे? यह भी उस सतगुरु के हाथ में है। उस शब्द की कमाई करने वाले के हाथ में हैं। आसन लगाकर तो बैठ जाता है और मन दौड़ता रहता है तो उसकी कोल्हू के बैल जैसी हालत हो जाती है। घर में ही पचासों कोस घूम जाता है। उसी तरह ध्यान में तो बैठे रहे मन टिकता नहीं है, कहीं का कही दौड़ता फिरता है। फिर उसका यत्न क्या करोगे? इसी कारण से तीन बंध लगाये जाते हैं। ये तीन बंधन हमारे मन को कहीं डोलने नहीं देंगे। हम तीनों इन्द्रियों के कारण ही तो मारे–मारे फिरते हैं। सब से ज्यादा तो ये काम इन्द्रियां हैं। अभी शोर शराबा सुनाई दिया और फटाफट

भागोगे। आंखों को कहोगे कि देखो क्या है? कान इशारा आंखों को देंगे और फिर जुबान बोल पड़ेगी। ये तीनों इन्द्रियां टेढ़ी हैं। अगर तीनों इन्द्रियां ठीक हैं तो फिर क्या करोगे? तुम्हारे मन में चोरी करने की बात आ गई। पर तन तुम्हारा उठा नहीं तो फिर मन क्या करेगा? यह टक्कर मार करके ही रह जाएगा। सो तीन पाप शरीर के हैं, चोरी, जारी और हिंसा। जब तुम उठकर ये पाप नहीं करोगे तो मन अपने आप ही ढीला पड़ेगा। इसी तरह से दस पाप बनाए हैं। चार पाप मन के हैं और वाणी के हैं। इस तरह से सीधी बातें बताता हूं कि आसन लगाकर बैठने से मन नहीं टिकता है तो गुरु के स्वरूप में लग जाओ। इन तीनों इन्द्रियों के कहे में मत चलो। इनको रोक लो। बंद कर दो। यही महात्मा गांधी ने कहा है। तीन बंदर थे। एक ने मुंह पर हाथ लगाया था, दूसरे ने कानों पर और तीसरे ने आंख पर हाथ लगा रखे थे। महात्मा गांधी ने भी यही सोचा है कि ये तीनों इंद्रियां ही सब से प्रबल हैं। इन तीनों पर बंद लगाना चाहिए। बंध कब लगेगा। जब तुम गुरु के रंग में रंग जाओगे तभी यह बंद लगेगा। इस मन को घट में रोकने का तरीका यही है कि–

शब्द धुन सुन कर मन पतियायी।

मतलब शब्द की धुन सुन कर मन रूक जाता है। शब्द की धुन तभी सुनाई देगी जब तुम उस सतगुरु के रंग में रंग जाओगे। पहले ये बातें आ चुकी है। जब तुम उस रंग में रंग गए तो शब्द की धुनि आप ही सुनाई दे जाएगी। फिर यह मन कहीं नहीं जा सकता है। स्वामी जी की ही एक वाणी है; कहा करते हैं। इस मन के पीछे पड़ जाओ और सारे यत्न छोड़ दो। एक इस मन के पीछे पड़ जाओ। मन को काबू में करने का एक ही मार्ग है और कोई भी मार्ग नहीं है। अगर सांप से भय है तो उसको पकड़ कर उसकी जहर की थैली निकाल दो। फिर उसे कोई भी लिये फिरता रहे।

भय कुछ भी नहीं रहेगा। सो इस मन के पीछे पड़ जाओ। इस मन की जहर की थैली इसके विकार ही हैं। विकार सतगुरु के रंग में रंगने पर ही मिटेंगे। विकार इसी कारण से ही तो उठते हैं कि यह सतगुरु के रंग में रंगा नहीं है। उसके रंग में रंग जाता है तो सभी विकार मिट जाते हैं। बाहर कई आदमी ऐसे भी मिलते हैं कि उन्हें देवी–देवताओं पर विश्वास होता है। मूर्तियों पर विश्वास होता है और वे उनके रंग में रंग जाते हैं। अनुचित कोई भी कार्य नहीं करते हैं। न घटिया बोलते हैं। वे तो मूर्ति से बेहद प्यार करते हैं और प्रेम में नाचते कूदते हैं। अब उनका मन उनको पर्चे देना शुरु कर देता है। सतलोक से नीचे–नीचे का सारा मन का खेल है। मन वहां तक दौड़ करता है। आगे सतगुरु का रूप बन जाता है। सो अगर मन को काबू में कर लिया तो सारा सब कुछ ही काबू में आ जाता है। बिना सतगुरु की दया के यह काबू में आता नहीं है। आगे कहते हैं कि पहले गुरु की प्रीत करके फिर शब्द को सुनना है। ये स्वामी जी महाराज की वाणी है–

बिना गुरु शब्द में पचते, वे नर भी मूर्ख जान।
शब्द खुलेगा गुरु मेहर से और किसी की नहीं मजाल।।

अर्थात् शब्द तो गुरु की मेहर से ही खुलेगा। ऐसा स्वामी जी महाराज कहते हैं। जब गुरु का स्वरूप लेते नहीं हैं और शब्द की कमाई करने की कोशिश करते हैं, गुरु का ध्यान करते ही नहीं हैं। गुरु का पता ही नहीं है। फिर अगर शब्द की मत्था–पच्ची करते हैं तो उनका शब्द तो कभी भी नहीं खुलता है। आगे कहते हैं–

गुरु की प्रीत कर पहले फिर घट शब्द को सुनना।
मान दो बात ये मेरी, करै मत और कुछ जतना।।

जब तुम्हारी ये दो बातें पक्की हो गई तो ये मैंने बता दिया है कि शब्द को गुरु की प्रीत करके ही सुन सकोगे। सो गुरु की प्रीत कर पहले फिर घट में शब्द को सुनना। वही मैंने स्वामी जी

की वाणी पहले बता दी है।

शब्द खुलेगा गुरु मेहर से और किसी की नहीं मजाल।
बिना गुरु शब्द में पचते, वे नर भी मूर्ख जान।।

अर्थात् शब्द तो गुरु की मेहर से ही खुलेगा। यही इस वाणी में कह दिया है कि पहले सतगुरु की प्रीत कर फिर शब्द में लग जा। मेरी इन दो बातों को मान लो। ज्यादा और बातें करने की जरूरत ही नहीं है। आगे कहते हैं कि जब तुम्हारा मन दौड़ते–दौड़ते थक जाए, सभी कुकर्म करके जब यह थक जाए, पर वास्तव में यह तभी थकेगा जब प्रकाश में लग जाएगा। आप पूछोगे कि यह शब्द में कैसे लगेगा? सो मन तो मन की व तियां एकाग्र होते ही लग जायेगा। मन की व तियों को एकाग्र करने का तुम्हें पता है। तुम चौपड़ ताश खेलते हो, मन की व ति एकाग्र हो जाती हैं और बड़ा भारी आनन्द आता है। तुम नशे भी करते हो। कल मेरे पास एक आदमी बैठा था। उसने कहा–मैं क्या करूं? जब परेशान होता हूं, तब पी लेता हूं। फिर एकाग्रता आ जाती है और परेशानी को भूल जाता हूं। मैंने कहा–इसका मतलब तो यही है कि तू शराब परेशानी में ही पीता है। उसने कहा–हां। तो उस परेशानी में सुरत–शब्द का अभ्यास दो घंटे या डेढ़ घंटा करो। मेहनत करनी पड़ेगी। अगर थोड़ी सी भी शब्द की झलक पड़ गई तो सारी ही बीमारी कट जाएगी। शांति मिल जाएगी। पर इससे हमारे ऊपर जोर पड़ता है क्योंकि हींस की झाड़ियों में जब रेशम का कपड़ा फंस जाता है तो उसको सुलझाना पड़ता है तो जोर पड़ता है। इधर शराब का प्याला पी लेते हैं या वह अफीम की गोली दबा लेते हैं उनमें जोर नहीं पड़ता है। फिर वे पड़े रहते हैं। पर इस तरह अभ्यास नहीं बनता है। अगर नशे करने से सुरत चढ़ती हो तो फिर तो नशे करने वाले सारे ही तिर जाएंगे। यह सब तो उरला व्यवहार है। नशे–विषय करने वाला कभी भी भक्ति नहीं कर

सकता है। वह तो काल का खाजा है। वह यहीं रह जाएगा। सों जब शब्द खुलेगा तभी शांति मिलेगी और बातों को छोड़ दो। जब यह मन हार जाएगा तो तुम्हारे पास एक शब्द ही रह जाएगा। यह मन फिर तुम्हारा कहा मानना शुरु कर देगा। आगे कहते हैं कि और तो सारा ही काम झूठा है। दुनिया सब झूठी है। सभी को त्याग दे। इसी शब्द को पकड़ और चौकस होकर पकड़। यह सार बचन में स्वामी जी महाराज की वाणी है। वे कहते हैं–**कह राधास्वामी समझाई अब नाम को गहना।** नाम का तुम्हें पता है। दो नाम होते हैं–एक धुनात्मक और एक वर्णात्मक। वर्णात्मक नाम का तो जाप कराया जाता है। जब वर्णात्मक का जाप नहीं करोगे तो धुनि में नहीं पहुंच सकते हो। सो वर्णात्मक नाम का ऐसा जाप करो कि अपने आपको भूल जाओ। जब उसका जाप करते–करते मंजिल पर चढ़ जाओगे तो धुनि को समझ जाओगे। सो ही कहते हैं–

कहैं राधास्वामी समझाई। गहो अब नाम की शरना।

नाम की शरण को पकड़ो। नाम की शरण से तिर जाते हैं। मैंने अपनी छोटी उम्र में एक मिशाल सुनी थी। इस तरह की कहानियां बहुत सुनी हैं। एक जंगल में रेवड़ चर रहा था। उसमें एक बूढ़ी बकरी थी। वह पीछे रह गई। रेवड़ गांव में आ गया। पाली भी आ गया। रात हो गई। मिशाल को सच्ची मत समझो। मिशाल को तो ऐसे समझो जैसे मकान को पक्का करने वाला ढोला होता है। ढोला तो कच्चा होता है। पर मकान को पक्का कर देता है। मिशाल तो कच्ची होती है पर मजबूती लाने के लिए ही होती है। वह वहां जंगल में ही बैठ गई। बकरी ने सोचा कि क्या करूं? वहां एक शेर के पद चिन्ह थे उनके पास बैठ गई। शेर आया तो उसने देखा कि खुराक मिल गई। शेर ने पूछा कि तू कौन है? तेरा धनी कौन है? बकरी ने कहा–मेरा धनी इन पद

चिन्हों वाला है। जिसके ये पद चिन्ह हैं वह मेरा धनी है। अब धनी बनकर तो कोई भी मारता नहीं है। वह तो उसकी शरण में गई हुई थी। शेर ने कहा–अच्छा यह धनी है। बकरी ने कहा–यही है। अब शेर ने दहाड़ मारी और उसने हाथी को बुला लिया। उसने उसको कहा कि इस बकरी को तू अपनी कमर पर चढ़ा ले। जब यह मेरी शरण में ही आ गई है तो इसे अपनी कमर पर चढ़ा। उसको यहीं पानी पिलाना और यहीं पर बैठी यह कोंपले खाएगी। वह हाथी पर चढ़ गई। महीना दो महीने उसके ऊपर ही रही। वही कूदी और खेली। वहीं पर पानी पिया। अब उसे मस्ती चढ़ गई। उसने कहा–हाथी ! अब मुझे एक बार अपने परिवार से मिला दो। मैं सुबह ही वापिस आ जाऊंगी। हाथी ने कहा–ठीक है। शेर से डरकर हाथी ने उसके गांव के पास उसे जा कर छोड़ दिया और कह दिया कि यहीं आ जाना। बकरी ने कहा–ठीक है। वह रेवड़ में चली गई। घर वालों ने कहा–देखो! अपनी बूढ़ी बकरी कितनी मोटी हो कर आ गई है। सभी को उसे देखकर अचम्भा हुआ। मोटी हो गई थी। उसको रेवड़ में रोक दिया। इतनी ही देर में कसाई आ गए। उन्होंने कहा कि कोई बकरी बेचनी है तो दिखाओ। उन्होंने कहा–देख लो। उन्होंने बकरी को पकड़ लिया। उन्होंने उसे देखते ही कह दिया कि ये मोटी–ताजी है और मांस ज्यादा है। यही लेनी है। उन्होंने कहा तो ले जाओ। यह तो दो महीने से गुम थी और आज ही रात को आई थी। ले जाओ। अब वे उसको ले गए और उन्होंने उसको ले जाकर काट लिया। अब बकरी ने कहा–

बड़ों के सरने जाय के निर्भय कोंपल खाय।
कुल ममता में आए के घर-घर मांस बिकाय।।

अर्थात् मैं ममता में आकर नीचे उतर आई। अब घर–घर में मेरा मांस बिक रहा है। सो हम बड़ों की शरण में चले जाते हैं तो

हमें किसी का भी भय नहीं रहता है। संतों की शरण में जाकर और राधास्वामी नाम लेकर फिर अगर कहते हैं कि भूत दुख देता है या चुड़ैल दुख देती है या मुझे कोई लाग लपेट है तो यह कोरा पाखण्ड है। जब इस नाम से काल महाराज भी डरता है तो जम के दूत कैसे आयेंगे? जब यम के दूत डरते हैं तो फिर देवी–देवता कैसे आयेंगे? देवी–देवता डरते हैं तो भूत–प्रेत कैसे आएंगे? भूत प्रेत डरते है तो पित्तर, भूत कैसे गैल करेंगे? यह कितनी नीचे जाने की बातें आ गई। गिरावट की बातें हैं ये। इसलिए नाम को वे समझे ही नहीं है। नाम ले लेते हैं। नाम से काम नहीं लेते हैं। नाम लेने से नहीं तिरोगे। काम करने से तिरोगे। नाम ले लिया पर शरण नहीं ली तो नहीं तिरोगे। नाम ले लिया और नाम को समझे नहीं तो किस तरह तिरोगे? जब तुम्हें गंदे स्वप्न आते हैं तो समझो तुम्हारे सुमरन में कमी है। जब तुम बैठते हो और गुनावनें उठती हैं तो समझो कि तुम्हारे पिछले पाप आगे आते हैं। समझो हमारे अंदर कमी है अभी भी। तो फिर क्या यत्न करोगे? मैं इतनी बात कह कर समाप्त करता हूं कि गुनावन उठती हैं तो उनको उठने दो। तुम रोक तो नहीं सकते हो। रोकना चाहते हो तो जैसे मन को रोकना बताया है वैसे गुनावन भी रूक सकती हैं। सुमरन करो। मेरा एक दिन गलत शब्द खुल गया। कई दिन तक खुला रहा। मैंने अपने महाराज जी से नहीं पूछा क्योंकि मैं डरता था। वे किसी से बातें करते तो धमका कर बोला करते थे। मैं कुछ नहीं बोला। पर मेरे मन में बड़ा भारी दुख हो गया। इतना परेशान हुआ कि उसे मैं ही जानता हूं। पर मुझे एक विश्वास था कि राधास्वामी नाम का जाप करते–करते ही काल खायेगा तो खाने दो। इसका मतलब तो यही है कि इस नाम में ही शक्ति नहीं है। लोग कहते हैं कि यह चौथे लोक का नाम है फिर भी काल खायेगा तो उसे खाने दो। हमारे यहां एक बूढ़ा कहा करता था कि हलवा खाते–खाते

जीभ घिसे तो घिसने दो और राम भजते हुए लोग हंसे तो हंसने दो। उस राधास्वामी नाम का सुमरन करते–करते ही अगर काल का सुर खुल गया है और अगर काल पकड़ता है तो राधास्वामी नाम में ही शक्ति नहीं है। सो राधास्वामी नाम को नहीं छोडूंगा। मैंने उनसे नहीं पूछा। एक दिन अचानक ही शब्द बदल गया। अब मैं सभी को कहता हूं कि घबराया मत करो। शब्द भी खुल जाए तो सुमरन किया करो। घंटे आधा घंटा फालतू बैठना शुरू कर दो। पर जो गुनावन उठती हैं उसमें बहो मत। बह गए तो मारे जाओगे। मजबूत होकर रहो। गुनावन आप ही रूक जाएंगी। वे कब रूकेंगी। जिस थैली में रुपये हैं उसमें से निकल जाएंगे तो थैली ही रह जाएगी। रुपये तो निकल ही गए। इसीलिए शरीर में जन्म जन्मांतरों की जो गुनावनें पड़ी हैं वे सुमरन करने से निकल जाएंगी तो फिर गुनावन अपने आप ही बंद हो जाएंगी। तुम अगर रोकोगे तो वे फिर खड़ी हो जाएंगी। कभी न कभी फिर आएंगी। उनको निकलने दो। यह मैंने अपना तजुर्बा बताया है। ये पुस्तकों की बातें नहीं हैं। जब वे समाप्त हो जाएंगे तो कहां से आएंगे फिर। पर सुमरन को और नाम को मत छोड़ो। घबरा कर छोड़ देते हैं। छोड़ देते हैं तो फिर वे यूं के यूं ही रह जाते हैं। फिर वे खत्म नहीं होंगे। सो सुमरन ध्यान में जुटे रहा करो। कभी भी मत चूको। **सो सुमरन तार टूट न जाई।** अगर तार ही टूट गया तो फिर तुम्हारे पास तो कुछ भी नहीं रहता है (जो तुम्हारी रक्षा करे) सो सुमरन तार को मत टूटने दो।

किसी के दिल में कोई बात हो तो मुझसे कहो। मेरा दरवाजा खुला है। ऐसा गरीब आदमी न मिला है और न मिलेगा। आगे कभी। जब संसार से मैं चला गया तो यही कहोगे कि महाराज जी से बहुत बातें करते थे। मैं घमण्ड की बातें नहीं कहता हूं जैसी बातें हैं वैसी बता देता हूं। मैं सीखी हुई

बातें भी नहीं कहता हूं। सीखी हुई बातें तो (निजी बातें होती हैं) जब मैं अकेला होता हूं तो कह लेता हूं। सत्संग में तो सीखी हुई बातें कही भी नहीं जाती हैं। सीखी बातें अगर कहूंगा तो अगले दिन भी वहीं बातें आ जाएंगी। अब मैं आपसे बोल लेता हूं और जो कहते हो कर देता हूं। सो मैं तो उनको समर्पित हूं। मुझे न दुख का पता है न सुख का। न हानि का पता है न लाभ का। न मुझे किसी की निंदा, स्तुति का ही पता है। आपने भी देखा है कि बड़ी–बड़ी निंदाए हो जाती हैं। मैं कहता हूं कि खुश रहो। हंसते–खेलते, खुश रहो। लोग अपना–अपना दिल खुश कर लेते हैं आप अपनी खुशी में कोई भी बाधा न डालो। तुम अपने सतगुरु के स्वरूप को देखते रहो और खुश रहो। उस प्रकाश को देखते रहो और शब्द को सुनते रहो। कुछ भी नहीं बने तो राधास्वामी नाम को जपते रहो। कई लोगों के दिल में यह ख्याल भी उठता है कि हमें यह नाम नहीं बताया वह नाम नहीं बताया। हमें तो ५ नाम नहीं बताए या चार नहीं बताए। बहुत से एक ही नाम जपते हैं। संतों के हिसाब से पांचों के बाद छठा शब्द राधास्वामी ही है। इसे निज नाम और मूलमंत्र कहते हैं। पांचों के ऊपर छठा नाम अगर नहीं लेते हैं और अगर इस नाम का हमने निशाना बांध लिया और धुनि का बांध लिया है तो ये सभी रास्ते में आ जाएंगे। नाम तो एक ही है। राधास्वामी। इसके विषय में कई बार बताया भी है। फिर कभी वक्त आया तो बता दूंगा। जैसी मौज होगी वैसा ही होगा। अब मैं प्रणाली के हिसाब से कैसेट भरने के बता दूंगा कि हमारी प्रणाली और हमारी मौज और हमारी धार आगरे से निकली है। सतगुरु के हुक्म के बिना उस नाम को कोई दे नहीं सकता है। यह सतगुरु की ड्यूटी होती है वह हुक्म देकर जाता है। हमारा आगरा से ही लगाव है और हम आगरे के ही हैं। राधास्वामी नाम हमारा नाम और मूल मंत्र है और उसी लाइन पर

हम चले हुए हैं। हमारी लाइन में बाप–दादा के हिसाब से गद्दी नहीं दी गई। हमारी लाइन में तो जो करणी का होता है वही बनता है। हजूर स्वामी जी महाराज तो खत्री थे। उनके शिष्य राय सालिगराम कायस्थ थे। उनके शिष्य महर्षि शिवव्रतलाल जी दूसरी जाति के कायस्थ थे। अब कायस्थ भी बारह होते हैं। वे थे तो कायस्थ ही उनके खानदान के नहीं थे। उनके शिष्य महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज के खानदान का तो कोई भी नहीं था, वे ब्राह्मण थे। अरमान साहब हुए वे मेरे दाता तो जाति के अहीर थे। मैं जाति का जाट हू। न जाति का न उनके गोत का ही का हूं। ये हमारी गद्दियां आई। बाप दादा के हिसाब से गद्दी नहीं दी जाती है। न पर्ची से ही गुरु बनाया जाता है। हमारे तो जो करनी का धनी होता है उसे सतगुरु चुन लेता है और अपनी प्रणाली अनुसार लाइन से चलते हैं और जो उसी लाइन से चलता रहेगा उसका काम बनता रहेगा। प्रणाली की लाइन से गिर जाएगा तो गिर जाता है। सो हम धुर दरगाह की स्वामी जी महाराज की धार हैं। उसको काम में लेते रहो। राधास्वामी नाम हमारा निजनाम व मूलमंत्र है। यही स्वामी जी का लेख है कि राधास्वामी नाम से ही उद्धार हुआ है और आगे भी होगा। राधास्वामी नाम के बिना न कोई मोक्ष में गया है और न ही जाएगा। राधास्वामी नाम धुनात्मक नाम है। जो इसे वर्णात्मक कहता है उसे सतगुरु पूरा नहीं मिला है। यह वह नाम है जो सारी दुनिया की जान है।

के मुख ले हंस बोलिए, दादू रे दीजे रोय।
जन्म अमोलक आपणा, चले अकारथ खोय।।
जाऊं–जाऊं सब करैं, मोहे अंदेशा और।
सतगुरु के पर्चे बिना पहुंचोगे किस ठौर।।

गगन में आवाज हो रही झीनी-झीनी जी।
सुनता है कोई ब्रह्मज्ञानी रे गगन में।

पहले आया बन्दे नाद बिंद से, पीछे जिमाया तेरा पानी जी।
पूरण हारा पूर रहा रे, अलख पुरुष निर्वाणी रे।।
एक बीज सकल घट बोया, क्रिया न्यारी-न्यारी जी।
दाता मेरे न बाग लगाया, खूब खिली फुलवाड़ी रे।।
गगन मंडल में गैया रे ब्याई, धरती में दही जिमाना जी।
मक्खन-मक्खन साधुजन लेगे, छाछ जगत भरमानी रे।।
जग में आया बंदे क्या पटा लिखवाया, त ष्णा नाहि बुझानी जी।
अम त छोड़ विषय रस पीवे, उलटी फांस फसानी रे।।
ओहम् सोहम् बाजे रे बाजैं, त्रिकुटी ध्यान समाना जी,
ईडा पिंगला सुखमन साधो, बंकनाल उल्टानी रे।।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, अगम निगम की वाणी जी।
अपना शीश नजर भर देखो, यही है अमर निशानी रे।।

जैसा सत्संग था वैसा ही शब्द हजूर ने अपने आप ही गवा लिया। सेवा से मेवा मिलती है। सभी सत्संगो में ही सेवा की बड़ाई की जाती है। पर मैं तो तुम्हें तुम्हारे घर में भी सेवा करना बताता हूं। अपने घर में भी सेवा किया करो। बूढ़ों की, बुजुर्गों की सेवा किया करो। प्रेम प्यार से रहा करो। घर में सेवा नहीं करोगे तो बाहर भी नहीं कर सकते हो। घर में जो सेवा करेगा, वह बाहर भी कर सकता है। सो अपने घरों में प्यार प्रेम से बुजुर्गों की सेवा किया करो। यही सब से बड़ा धर्म व भक्ति है। इसमें सब कुछ मिल जाता है। कई बार यह बात बताई है कि सावणसिंह जी महाराज से कहने लगे कि महाराज जी, आप अब आराम करो। उन्होंने कहा कि किसी दिन इकट्ठा ही आराम करूंगा। मैं तो आप लोगों का सेवक बनकर आया हूं। जितनी भी सेवा होगी कर दूंगा। आगे तुम्हारी मर्जी है। सब को राधास्वामी।

।। राधास्वामी ।।

ध्यानाकर्षण बिन्दू

सभी सत्संगियों को स्मरण कराया जाता है कि प्रत्येक आश्रम से सत्संगियों की दिनोद धाम में सेवा की बारी आती है। अतः आप सभी अपनी-2 शाखा में जाकर अपनी सेवा का समय पूछें और निश्चित समय पर धाम में सेवा तथा दर्शन लाभ उठायें।

अप्रेल/मई 2006 मास के लिए सेवा कार्यक्रम

1	कोसली	24 अप्रैल	-	30 अप्रैल
2	लालपुर	01 मई	-	07 मई
3	चौबारा	08 मई	-	14 मई
4	थिरपाली	15 मई	-	21 मई
5	गाधली	22 मई	-	28 मई

जीवन-दर्शन

सतगुरु को क्या स्वार्थ होता है? उनकी हर बात में कुछ न कुछ राज होता है। जो गुरु से सच्चा प्यार नहीं करता है, वह कभी भी सतगुरु से लाभ नहीं उठा सकता है। जो सतगुरु की बातों को मिट्टी में मिला देना चाहते हैं, समझो खुद मिट्टी में मिलने जा रहे हैं। जो सतगुरु से प्यार नहीं करता है, उसको कोई भी प्यार नहीं करता है।

-परम सन्त हुजूर ताराचन्द जी महाराज

सत्संग कहते हैं सच्चे जीवन की संगत को। यह जीवन जो हम तुम सब लोग व्यतीत कर रहे हैं, सत् का जीवन नहीं है। शारीरिक जीवन है, मन, बुद्धि का जीवन है। इन्द्रियों के संग में रहने से इन्द्रियों का प्रभाव तुम में आ जावेगा। शरीर का संग करने से शारीरिक रोग पैदा होंगे और मन का संग करने से संकल्प-विकल्प की भावनायें अधिकता के साथ पैदा होगी। ये सभी असत् हैं। असत् संग में और सत्संग में अन्तर होता है। जिसकी संगत अधिक करोगे, उसके प्रभावों से घनिष्ट सम्बन्ध रहेगा और वैसे ही बनते चले जाओगे। गुरु का जीवन सत् का जीवन है। न वह इन्द्रियों का है, न मन का है, न बुद्धि का है। यह आध्यात्मिक जीवन है और इसी को सत् कहते हैं।

जिस समय तुम गुरु का सत्संग करोगे, धीरे-2 यह गुण तुममें आप ही आप उत्पन्न होते चलेंगे। हृदय में विशालता आयेगी। गुरु के जीवन के प्रभाव उसी प्रकार अंकित होते चले जायेंगे, जिस प्रकार नर्म मोम बहुत आसानी के साथ ही हर चीज के ठप्पे के चित्र को स्वीकार कर लेता है। अधिक दिन की पड़ी हुई आदत शीघ्र नहीं जाती है। धीरे-2 दूर होती है।

चूंकि आदत बदली हुई है कुछ दिनों सत्संग करने से स्वयं ठीक हो जायेगी और उस समय शिक्षा मुख्य प्रकार का प्रभाव दिखायेगी। गुरु ने सत्संग का सिलसिला इसी कारण स्थापित कर रखा है कि अगर जल्दी नहीं है तो, खैर देर ही में कुछ न कुछ रंग आता जायेगा। यदि सत्संग की बरकत से यह रंग धारण कर लिया गया तो फिर कुप्रभावों का भय नहीं रहेगा।

जाको गुरु ने रंग दिया, कभी न होय कुरंग।
दिन दिन बाणी ऊजली, बढ़े सवाया रंग।।

अनमोल वचन

न तुम्हारी दौलत तुम्हें खुदा के नजदीक ला सकती है, न तुम्हारी औलाद। खुदा के नजदीक तो वही जा सकता है जो सन्त महात्माओं की बात मान ले और दूसरों की भलाई करें।

—हजरत मोहम्मद

यदि हम भले हैं तो सारा संसार हमारे लिये भला है।

—समर्थ गुरु रामदास

दुनिया एक बाजार है, यहां हर चीज बिकती है।

—सन्त कबीर दास

भय से ही दुख आते हैं, भय से ही म त्यु होती है और भय से ही बुराइयां उत्पन्न होती हैं। *—स्वामी विवेकानन्द*

भावपूर्वक, बुरे भाव से, झुंझलाकर अथवा आलस्य से-चाहे जिस भाव से भी मनुष्य भगवान का जप करे तब भी दसों दिशाओं में सब और से उसका मंगल होगा।

—संत तुलसीदास

ज्ञान-सार

जितना समय हम किसी कार्य की चिन्ता में लगाते हैं, यदि उतना ही समय हम उस कार्य में लगाएं तो चिन्ता जैसी कोई चीज ही नहीं रह जायेगी।

चिन्ता एक काली दीवार की भांति चारों ओर से घेर लेती है, जिसमें से निकलने की फिर कोई गली नहीं सूझती।

वासनाओं का त्याग करो, चिन्ताएं स्वयं पीछा छोड़ देंगी।

कार्य की अधिकता मनुष्य को नहीं मारती बल्कि चिन्ता मारती है।

चिन्ता शहद की मक्खी के समान है। उसे जितना हटाओ उतना ही और चिमटती है।

सत्संग भावांश ईस्माइलपुर 12.3.2006

आज का जीव विभिन्न प्रकार के दुखों से इतना दुखी है कि पहले के युगों में यह इतना दुखी कभी भी नहीं हुआ। परन्तु सन्तों ने जीव पर दया करके इसके कर्मों यानि इसके दुखों को काटने के लिए इसको नाम का मार्ग भी इतना सीधा और सुखाला प्रकट कर दिया है कि ऐसा सीधा और सस्ता मार्ग उसे कभी भी नहीं मिला। परन्तु इसके लिए यह जरूरी है कि जीव दृढ़ निश्चयी व सच्चा जिज्ञासु हो और उसको शब्द भेदी सन्त सतगुरु मिल जाए।

आज जीव के सामने उसके परमार्थिक मार्ग में दो कठिनाइयां आ रही हैं। पहली कठिनाई तो यह है कि जीव अपने कर्मों के बन्धन के कारण ही तो इस संसार में आता है। पर मनुष्य ने स्वयं ही अपनी सामाजिक मर्यादाएं ऐसी बना ली हैं कि उनके कारण वह अपने कर्मों के भार को कम नहीं कर पाता है। दूसरे मनुष्य गन्दे कर्म करते हुए तो वह अपने कुल-कुटुम्ब, परिवार की व समाज में छोटे बड़े की शर्म नहीं करता है। परन्तु भक्ति जैसे शुभ कार्य में थोड़ी देर मालिक की याद में बैठने में वह शर्म महसूस करता है। पर जिस जीव की चाह सच्ची है और वह मालिक का प्यारा है तो वह अपने सतगुरु के वचनों पर चलकर ध्यान-अभ्यास में बैठता है। सतगुरु भी ऐसे जीव की सहायता करता है और उसके अन्तर में सूक्ष्म रूप में प्रकट होकर मंजिल दर मंजिल उसके

कर्म कटवाता हुआ उस जीव को निजधाम में पहुंचा देता है। इस प्रकार से यह जीव के कर्मों के काटने का एक बहुत ही सरल और सस्ता मार्ग है। इसीलिए स्वामी जी महाराज ने, जिसने राधास्वामी मत प्रकट किया अपनी पुस्तक सारवचन में पहली ही पंक्तियां ये लिखी हैं कि-

राधास्वामी नाम, जो गावै, सोई तरे।
कल क्लेश सब नाश, सुख पावे सब दुख हरे।।

परन्तु जीव को निजधाम में पहुंचाने का यह कार्य केवल सन्त सतगुरु ही कर सकता है। आज तो संसार में बहुत गुरु बन कर बैठ गए हैं। कोई दो मंत्र देते हैं, कोई तीन, चार, पांच और कोई दस मंत्र देते हैं। उन्होंने अपनी मनमर्जी के असंख्य नाम बना लिए हैं। वास्तविकता यह है कि उन्हें न ही नाम का ज्ञान है और न ही उनको अन्तर में गुरु को प्रकट करके कर्मों को काटने व कटवाने की विधि का ही पता है। इसीलिए वे स्वयं ही कर्मों के बन्धन से नहीं छुट पाते हैं, फिर वे दूसरे जीवों को कर्मों के बन्धन से कैसे छुटवा सकते हैं? सच पूछा जाए तो इन्होंने जीवों को काल के खूण्टे से बान्ध दिया है। वस्तुत: शब्द-मार्गी सन्त सतगुरु के बिना नाम के मार्ग की चर्चा करना भी व्यर्थ है। कबीर साहब ने तो सदियों पहले ही यह बात कह दी थी कि-

बहुत गुरु संसार गुरु हैं, मंत्र देत हैं काना।
उपजें, विनशें या भवसागर, मर्म न काहू जाना।।

इन बहुत से तथाकथित गुरुओं की जीवों को नाम देने की भी भान्ति-भान्ति की बड़ी ही आश्चर्यजनक विधियां हैं। परन्तु इनको जीवों को भव बन्धन से छुटवा कर उन्हें निजधाम अर्थात् मुक्तिधाम में यानि उस जगह पहुंचाने का कतई पता नहीं है जहां पर दुख व कष्ट नाम की कोई चीज नहीं है। ■

सेवा सिद्ध सफलता, सेवा विजय अपार।
सेवा में मेवा मिले, सेवा में करतार।।

बात सन् 1998 की है। मैं नेहरू मेमोरियल लॉ कॉलेज हनुमानगढ़ का द्वितीय वर्ष का छात्र था। हम तीन साथी इकट्ठे ही एक ही कमरे में रहते थे। मैं तो घर पर खेती के काम में पिता जी का हाथ बंटाता था और ज्यादातर समय घर ही रहकर पढाई करता था और महीने में एक बार तो महाराज जी के दर्शनार्थ व दिनोद धाम में सेवा करने के लिए आता रहता था। मैंने नामदान परम संत हुजूर ताराचन्द जी महाराज के आखिरी सत्संग भिवानी में नवंबर 1996 में लिया था, जो कि बड़े महाराज जी के आदेश के मुताबिक हमें नामदान परम संत कंवर साहिब जी महाराज ने दिया था। उस समय हम लॉ द्वितीय वर्ष में थे। अजमेर विश्वविद्यालय द्वारा यह व्यवस्था थी कि सभी लॉ के प्रथम, द्वितीय व तृतीय वर्ष के छात्रों को कुल वार्षिक परीक्षा के 100-100 अंकों के पेपरों में से 15-15 अंको के सैशनल एग्जाम दिसम्बर महीने में देने होते थे और इस प्रकार वार्षिक परीक्षा में केवल 85-85 अंकों के ही पेपर होते थे। प्रत्येक पेपर के पन्द्रह अंकों में से जितने अंक सैशनल एग्जामों के दिसम्बर माह में आते थे, वे परीक्षार्थी के 85 अंकों के वार्षिक एग्जामों में आने वाले अंकों के साथ जुड़ जाते थे। सैशनल एग्जाम लगभग दिसम्बर माह में ही होते थे। वे किस तारीख से शुरू होने होते थे, इसकी सूचना कालेज प्रशासन पोस्ट कार्ड द्वारा प्रत्येक छात्र को उसके बताये पते पर परीक्षा शुरू होने के 10-15 दिन पहले भेज देता था। मैं सतगुरु कृपा से दिनोद धाम में कुछ दिन की सेवा करने के लिए आ गया और पीछे से घर पर मेरे सैशनल एग्जाम की डेटसीट का पोट कार्ड आ गया। उस समय फोन की सुविधा बहुत कम थी। जब मैं सेवा करके

घर पहुंचा तो घरवालों ने मेरे को वह पोस्ट कार्ड दिखाया। मैंने सतगुरु पर विश्वास रखा और मन ही मन सोचा कि प्रत्येक विषय के 100-100 अंकों के पेपरों में से 15-15 अंकों के तो पेपर हो चुके हैं। अब मैं पूरी तैयारी करके वार्षिक परीक्षा के बाकी बचे 85 अंकों के प्रत्येक विषय के पेपर में जितनी हो सके उतनी मेहनत करके अच्छे अंक लूं। सो मैंने मेहनत की। वार्षिक परीक्षा हो गई और कुछ समय पश्चात् जब मैं हनुमानगढ़ (राजस्थान) कॉलेज से मेरी डी.एम.सी. लाने के लिए गया तो डी.एम.सी. को देखकर मुझे व मेरे दोनों दोस्तों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि जो मेरे दोनों दोस्त कमरे पर रहकर दिन रात पढ़ते थे और उन्होंने 15-15 अंक का सैशनल एग्जाम दिसम्बर में दिया था उनके 15-15 अंकों में से किसी में 6, किसी में 7 तो किसी में 8 अंक आये थे। हमारे कुल पेपर (विषय) छः थे। जबकि मैंने सैशनल एग्जाम दिये ही नहीं थे और मैं तो उस वक्त दिनोद धाम में सेवा कर रहा था। मेरे सतगुरु ने मुझे प्रत्येक विषय में 15 में से 10-10 अंक दिलवाये। मैं डी.एम.सी. देखकर हैरान रह गया और मेरे दोस्त कहने लगे कि तूने तो ये एग्जाम दिये ही नहीं थे तो यह काम ऐसे कैसे हो गया। मैंने मन ही मन सोचा कि हे कुल मालिक, मेरे सतगुरु, मेरे दाता ! तेरे बगैर ऐसा काम कौन कर सकता है? एक तू ही तो है जो विश्वास करने पर सभी के विश्वास पर खरा उतरता है।

– सुरजीत सिंह चौहाण एडवोकेट,
गांव/पो. नेजिया खेड़ा, तह. /जिला सिरसा
फोन : 01666-255812
मो. 98133-29644

नोट :-जिस किसी सत्संगी भाई के साथ इस प्रकार सतगुरु दया की घटना घटी हो तो प्रमाण सहित दिनोद धाम में भाई बलबीर सिंह को दे सकते हैं।

परम सन्त हुजूर ताराचन्द जी महाराज के सत्संग प्रवचन से

सत्संग उसे ही कहते हैं, जिसमें किसी की बुराई, बदनामी न हो। वहां तो किसी को न गाली देनी होती है और न ही किसी से लड़ना झगड़ना होता है। वहां तो रूहानी दौलत बंटती है। सो सन्तों का सत्संग सत्संग ही होता है। सत्संग की महिमा का वर्णन नहीं हो सकता है। सत्संग का वर्णन शिवजी करते हैं। शिवजी कहीं जा रहे थे। पार्वती साथ में थी। शिव जी ने नंदी से उतर कर भूमि की बहुत ही बन्दगी की। पार्वती ने कहा-यहां तो कोई मूर्ति भी नहीं है, पिण्डी भी नहीं है, आप किसकी बन्दगी करते हो? शिवजी ने कहा-हे पार्वती ! यह भूमि बड़ी भाग वाली है। दस हजार वर्ष पहले एक सन्त ने यहां सत्संग किया था। यह बात गरीब साहब की बाणी में मैंने सुनी थी। शिव जी ने पार्वती से कहा-इसलिये ही इस भूमि को मैं मत्था टेकता हूं, बन्दगी करता हूं। फिर आगे जाकर शिव जी ने फिर कहा-यहां आगे कोई सन्त आने वाला है। यह भूमि बड़ी भाग्यशाली है। वह सन्त यहीं सत्संग करने वाला है।

सत्संगियों ! सन्तों की महिमा को सन्त ही जानते हैं इसलिए कहते हैं-

सन्त चरण गंगा की धारा। जहां टिकें हो निस्तारा।।

■